JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

गांधी के अराजकतावादी अवधारणा

डॉ बासुदेव प्रजापति

सहायक प्राध्यापक

राजनीति विज्ञान विभाग

के0 बी0 कॉलेज , बेरमो, बोकारो, झारखण्ड – 829113

महात्मा गांधी को आधुनिक युग का असाधारण पुरुष, प्रगाढ़ देश– प्रेमी, महान, राष्ट्रीय नेता, श्रेष्ठ समाज सुधारक एवं उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ माना जाता है. और उनके द्वारा प्रतिपादित किये जाने वाले सिद्धांतों को 'गांधीवाद' के नाम से पुकारा जाता है। वस्तुतः गांधीवाद को किसी सुनिश्चित वाद, मत, दर्शन या सिद्धांत की संज्ञा नहीं दी जा सकती। क्योंकि गांधीजी– हॉब्स, लॉक एवं रूसो के समान राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे और इसलिए उन्होंने इन दार्शनिकों की भाँति किसी सुसम्बद्ध दर्शन या विचारधारा का निर्माण नहीं किया। उन्होंने अपने समक्ष उपस्थित होने वाली समस्याओं के समाधान के लिए व्यवहारिक सुझाव दिये।[1]

गांधीजी का धर्म मूलतः मानवतावादी है। उसका चरम लक्ष्य मानव सेवा है। गांधी धर्म के प्रमुख तत्व सत्य और प्रेम अथवा अहिंसा है। वे व्यक्ति के दैहिक मानसिक और आचरणात्मक पंथों को धर्म से संयुक्त करते हैं। उनकी निष्ठा धर्मानुप्राणित व्यक्तित्व में है। महात्मा गांधी ने राजनीति का आध्यात्मीकरण किया। उनका विश्वास था कि यदि राजनीति को मानव समाज के लिए वरदान होना है तो उसे उच्चतम नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए। उन्होंने राजनीति को उच्च नैतिकता और धार्मिक भावना से ओत–प्रोत किया। वे धर्म और राजनीति को पृथक नहीं जानते कि धर्म का क्या अर्थ है। धर्म से पृथक कोई राजनीति नहीं हो सकती । गांधीजी मूलतः धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे और जिस प्रकार उन्होंने अपने जीवन में धर्म का निर्वाह किया, उस आधार पर उन्हें भारतीय परम्परा का एक महान संत कहा जा सकता है। एक धार्मिक नेता होते हुए भी गांधीजी धार्मिक रूढ़िवादिता और धर्मान्धता के समर्थक नहीं थे तथा धर्म के सम्बंध में उनका दृष्टिकोण लौकिक तथा मानवतावादी था। वे प्राणीमात्र की सेवा ही वास्तविक आध्यात्मिक जीवन का मूल तत्व मानते थे और उनका कथन था कि 'मानव क्रियाओं से पृथक कोई धर्म नहीं।' इसी प्रकार वे राजनीति शब्द में 'नीति' अर्थात धर्म और मानवता को प्राथमिकता देते थे। 'राज' अर्थात सत्ता को नहीं। धर्म के सम्बंध में अपने इस लौकिक दृ ष्टिकोण के कारण ही गाँधीजी ने राजनीति में प्रवेश कर राजनीति में नीति के महत्व का प्रतिपादन किया। उन्होंने राजनीति में प्रवेश इसलिए किया क्योंकि राजनीति धर्म विहीन होती जा रही थी और उसमें धर्म की पुनर्स्थापना करना वे अपना कर्तव्य समझते थे।

गांधीजी एक महान कर्मयोगी थे जो जीवन को एक ऐसी अविभाज्य इकाई समझते थे जिसकी विभिन्न क्रियाओं को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता और इसलिए वे यह मानते थे कि उन्होंने अपने धार्मिक कर्तव्य के एक अंग के रूप

में ही राजनीति में भाग लिया है। उन्होंने राजनीति में धर्म का समावेश करके नैतिकता के उस दोहरे मापदण्ड को मिटाने का प्रयास किया जो ऐसे शब्दों में निहित होता है कि ''राजनीति – राजनीति है, और व्यापार–व्यापार है।'' गांधीजी के शब्दों में ''जो यह कहते है कि राजनीति से धर्म का कोई सम्बंध नहीं है वे धर्म को नहीं जानते। जो देश–प्रेम को नहीं जानता वह धर्म को नहीं जानता।'' गांधीजी के अनुसार राजनीति देश–धर्म है, उससे अलग होकर व्यक्ति आत्मघात करता है, लेकिन उनकी धार्मिकता का अर्थ रूढ़िवादी धर्म से नहीं था क्योंकि धार्मिक पाखण्ड और आडम्बरयुक्त मूर्तिपूजा के वह विरोधी थे । निष्प्राण मूर्तिपूजा के स्थान पर वे मानव पूजा में विश्वास करते थे। गांधीजी के लिए–धर्म से अलग होकर राजनीति एक मृत देह के समान थी।'' उनके मतानुसार राजनीति शक्ति और सम्पति प्राप्त करने के लिए काम करता है धार्मिक हुए बिना नहीं रह सकता। राजनीति को धर्मानुमोदित मानने से गांधीजी का यह अभिप्राय नहीं है कि राजसता धर्माधिकारियों के हाथों में सौंपी जानी चाहिए। राज्य से किसी धर्म विशेष या सम्प्रदाय विशेष का प्रचारक बनना चाहिए। उनकी आदर्श सर्वोदय– समाज व्यवस्था में तो राजधर्म निरपेक्ष है, जिसका आषय है कि राज्य के नागरिकों को निर्विवाद रूप से स्वधर्म पालन का पूर्ण अधिकार हो, राज्य न किसी धर्म का संरक्षण करे और न किसी धर्म के उचित विकास में ही बाघक हो । राज्य का अपना कोई विशेष धर्म या सम्प्रदाय न हो, किन्तु राज्य धर्म– रहित भी न हो, अर्थात राजनीति धर्म के सार्वभौमिक नियमों–सत्य अहिंसा, प्रेम सेवा आदि का पूर्ण पालन करें। गांधीजी ने कहा था ''राजनीतिज्ञों को सब धर्मों के प्रति समान भाव रखना चाहिए और राजनीति या सार्वजनिक जीवन में नीति–धर्म के सार्वभौमिक मूल्यों पर अटल रहना चाहिए।[2]

गांधीजी का राजनीतिक विचार– धर्म, नैतिकता एवं आध्यात्मिकता से अनुप्राणित एवं ओत–प्रोत हैं।उनके विचारों पर दार्शनिक अराजकतावादी, टॉल्सरॉय का अमिट प्रभाव पड़ा है, उन्होंने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है। अराजकतावादी के समान वे राज्यहीन समाज को आदर्श मानते थे। किन्तु वे क्रांतिकारी अराजकतावादी न होकर सत्य एवं अंहिसा के पुजारी थे। अतः वह हिंसा के द्वारा नहीं वरन् अहिंसा के आधार पर एक नवीन आदर्श समाज या राज्य का निर्माण करना चाहते थे। गांधीजी अपने आदर्श राज्य को 'रामराज्य' और 'राज्यविहीन लोकतंत्र' कहा है। जिसे कई नामों से पुकारा जाता है जैसे – अहिंसात्मक राज्य, अहिंसात्मक लोकतंत्र, नवीन या आदर्श समाज, राज्यविहीन समाज, अहिंसात्मक समाज, राज्यविहीन एवं अहिंसात्मक राज्य आदि । गांधीजी ने अपनी रचनाओं में अहिंसात्मक राज्य या समाज की विस्तृत रुपरेखा अंकित की है। फिर भी उनके विभिन्न लेखो, भाषणों, वक्तव्यों आदि में राज्य–सम्बंधी धारणा का पर्याप्त परिचय मिलता है।

अराजकतावादी होने के कारण गांधीजी ने राज्य का घोर विरोध किया है। उनका विचार है कि राज्य अनावश्यक बुराई है, क्योंकि वह मानव जीवन के मूल्यों का विनाश करता है, उन्होंने नैतिक, आर्थिक, दार्शनिक ऐतिहासिक, सभी दृष्टियों से राज्य को निरर्थक एवं निस्सार घोषित किया है।[3] रामराज्य की कल्पना करने वाले गांधी ने राज्य को एक आवश्यक बुराई कहा। मार्क्सवादियों तथा अराजकतावादियों के समान गांधीजी एक राज्यविहीन समाज की कल्पना स्थापना करना चाहते थे। वे दार्शनिक, नैतिक, ऐतिहासिक व आर्थिक कारणों के आधार पर राज्य का विरोध करते थे अतः उन्हें दार्शनिक अराजकतावादी भी कहा जाता है। अहिंसा और सत्याग्रह के पथ प्रदर्शक बनकर गांधी ने भारतीयों को एकता के सूत्र में बांधा, अंग्रेजी नीतियों का विरोध शांतिपूर्ण तरीके से किया लेकिन जब भी गांधी के विचारों का अंग्रेजी सरकार ने विरोध किया या उन्हें दबाने की कोशिश की तभी असहयोग का ज्वार फुटा, कभी सविनय अवज्ञा आन्दोलन हुई और अंततः भारत छोड़ो आन्दोलन के जरिये अंग्रेजी हुकुमत की चूलें हिला दी। स्पष्ट है गांधी एक दृढ़ निश्चयी व्यक्तित्व के धनी थे जिन्हें हारना कभी पसंद नहीं था और गांधी की इसी जिंद ने उन्हें महान प्रणेता बना दिया ।

गांधीजी ने नैतिक, ऐतिहासिक तथा आर्थिक तीनों दृष्टिकोणों के आधार पर राज्य की कटु आलोचना की है। गांधीजी राज्य को एक ऐसी हिंसक संस्था मानते हैं जिसका कार्य निर्धन वर्ग का शोषण करना है। राज्य के द्वारा नैतिकता का हनन

किया जाता है। अतः या तो राज्य को ही समाप्त हो जाना चाहिए अन्यथा उसे व्यक्ति रूपी पुस्तक का अंतिम अध्याय रहना चाहिए। स्वयं गांधीजी के शब्दों में ''राज्य केन्द्रीत और संगठित रूप में हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। व्यक्ति एक सचेतन आत्मवान प्राणी है, किंतु राज्य एक ऐसा आत्महीन यंत्र है जिसे हिंसा से पृथक नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसकी उत्पत्ति ही हिंसा से हुई हैं।''[4] गांधीजी का विचार है कि व्यक्ति की आत्म–अनुभूति साध्य है और राज्य को साधन के रूप में व्यक्ति को आत्मः अनुभूति की प्राप्ति में सहायता देनी चाहिए। किन्तु राज्य अपनी शक्ति के कारण स्वयं साध्य बन जाता है और व्यक्ति को साधन बना देता है। इस दृष्टि से राज्य की सत्ता को व्यक्ति के लिए सर्वथा अहितकर बताते हुए, गाँधीजी ने लिखा है 'मेरे लिए राजनीतिक सत्ता, साध्य नहीं हैं, वरन मानव की उन्नति के लिए प्रत्येक क्षेत्र में साधन–मात्र है।' उसी प्रकार गांधीजी व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक है। उनकी मान्यता है कि व्यक्ति को अपने आध्यात्मिक विकास के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की आवश्यकता है। किन्तु राज्य कानून के रूप में अपनी बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग करके व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन होता है। अतः राज्य की निंदा करते हुए गांधीजी ने कहा है– 'यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में जान पड़ता है कि राज्य, कानून द्वारा शोषण को कम करके, जनता का हित करता है, तथापि यह सत्य है कि वह मानव. व्यक्तित्व का विनाश करके मानव जाति की अधिकतम हानि करता है।' इतना ही नहीं गांधीजी ने राज्य को हिंसामूलक माना है, क्योंकि उनका आधार, पाश्विक शक्ति है। वह सेना, पुलिस और न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करके व्यक्तियों को अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए विवश करता है। अतः गांधीजी ने राज्य का विरोध करते हुए, यह मत प्रकट किया है. 'राज्य हिंसा का केन्द्रीय एवं संगठित रूप है। व्यक्तियों में आत्मा होती है, पर राज्य आत्महीन यंत्र है। वह हिंसा पर जीवित रहता है और उसे हिंसा से पृथक नहीं किया आ सकता है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति, हिंसा से हुई है।'[5]

गांधीजी का मत है कि राज्य में व्यक्ति की नैतिकता के विकास के लिए कोई अवसर नहीं है। उनका कथन है कि व्यक्ति का कार्य नैतिक तभी हो सकता है, जब वह उसको अपनी स्वतंत्र इच्छा से करे। यदि वह राज्य की आज्ञा से बाध्य होकर किसी कार्य को करता है, तो उसे नैतिक नहीं कहा जा सकता है। अतः नैतिकता के आधार पर राज्य तिरस्कार करते हुए, गाँधीजी ने लिखा है कोई भी ऐसा कार्य, जो हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं है, नैतिकता नहीं कहा जा सकता है। जब तक हम यत्रों के समान कार्य करते हैं, तब नैतिकता का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता है। वही कार्य नैतिक है, जो जानबुझकर और कर्तव्य समझकर अपनी इच्छा से किया जाय।' राज्य अनैतिक इसलिए है, क्योंकि वह हमें सब कार्यों को अपनी इच्छा से नहीं वरन दण्ड और कानून की शक्ति से विवष करके, करवाना चाहता है।[6]

राज्य को एक आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार करते हुए गांधीजी ने राज्य के प्रभाव और शक्ति को कम–से–कम करने का प्रयत्न किया, जिससे राज्य सत्ता के होते हुए भी व्यक्ति वास्तविक रूप में स्वतंत्रता प्राप्त कर सके। इस सम्बंध में गांधीजी के द्वारा तीन सुझाव दिये गये हैं, जो इस प्रकार है–

(1) **सत्ता का विकेन्द्रीकरण** – गांधीजी के द्वारा सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुझाव राजनीतिक क्षेत्र में सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर दिया गया है। जिसके अन्तर्गत ग्राम पंचायतों को अपने गांवों का प्रबंध और प्रशासन करने के सब अधिकार दे दिए जाएँ। उनका कहना था कि सत्ता का केन्द्रीकरण सदैव ही हानिकारक होता है। इसके परिणामस्वरूप कुछ थोड़े से व्यक्ति राज्य की सत्ता पर एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं. और छल कपट द्वारा उनके साधनों का प्रयोग अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए करते हैं जिसे रोकने का एकमात्र उपाय सत्ता का विकेन्द्रीकरण ही हो सकता है। राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी गांवों का चित्र उपस्थित करते हुए उन्होंने लिखा है, 'मेरे ग्राम स्वराज्य का आदर्श यह है कि प्रत्येक ग्राम एक पूर्ण गणराज्य हो। अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए यह अपने पड़ोसियों पर निर्भर न रहे। इस प्रकार प्रत्येक गांव का पहला काम होगा खाने के लिए अन्न और कपड़ों के लिए रुई की फसल उत्पन्न करना। गांव की अपनी नाट्यशाला, सार्वजनिक भवन और पाठशाला भी होनी चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षा अंतिम कक्षा तक अनिवार्य होगी। यथासंभव प्रत्येक कार्य

सहकारिता के आधार पर किया जाएगा। गांव का शासन पांच व्यक्तियों की पंचायत द्वारा संचालित होगा। पंचायत ही गांव की व्यवस्थापिका सभा, कार्यकारिणी व न्यायपालिका सभी कुछ होगी।'

(2) **राज्य का न्यूनतम कार्यक्षेत्र** – राज्यसत्ता की बुराइयों को दूर करने के लिए उनका दूसरा सुझाव यह था कि राज्य का कार्यक्षत्र न्यूनतम होना चाहिए, उसके द्वारा व्यक्ति के जीवन में कम से कम हस्तक्षेप किया जाना चाहिए। हेनरी डी. थोरु के इस विचार से वे सहमत थे कि 'सर्वोतम सरकार वह है कि जो सबसे कम शासन करती हैं।'[7] उनका कहना था कि 'स्वराज्य का अर्थ यह है कि व्यक्ति को सरकार के नियंत्रण से स्वतंत्र होने का निरंतर प्रयत्न करना चाहिए, चाहे वह सरकार विदेशी हो और चाहे राष्ट्रीय।'

(3) **राज्य के प्रभुत्व सिद्धांत का खंडन** – गांधीजी व्यक्ति और राज्य में व्यक्ति को साध्य और राज्य को साधनमात्र मानते थे और इस कारण उनके द्वारा राज्य के प्रभुत्व सिद्धांत का खण्डन किया गया। व हीगल या अन्य सर्वाधिकारवादियों की बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे कि व्यक्ति राज्य की प्रत्येक आज्ञा माने। उनका कथन था कि राज्य जनता की भक्ति का हकदार तभी हो सकती है जब वह जनता के कल्याण की दिशा में आगे बढ़े और जनशक्ति पर आधारित हो । गाँधी जी लिखते हैं.. 'राजभक्ति का कोई अपरिवर्तनशील सिद्धांत नहीं है वह तो एक पारस्परिक आदान–प्रदान है।' इसलिए जैसे ही राज्य अपने कर्तव्यों से विमुख हो जाता है, जनता पर अन्याय और अत्याचार करने लगता है और ऐसे कानूनों का निर्माण करता है जो व्यक्ति के अंतःकरण के विरुद्ध हो, तो वह जनता की भक्ति प्राप्त करने का अधिकार खो बैठता है। ऐसी स्थिति में जनता का न केवल अधिकार वरन कर्तव्य हो जाता है कि उसके द्वारा राज्यसत्ता का विरोध किया जाय।[8]

राज्य के विरोध में तर्क प्रस्तुत करने के बाद गांधीजी ने यह आशा प्रकट की है कि राष्ट्रीय जीवन को पूर्ण बनाकर, व्यक्ति को आत्म अनुशासित बनाया जा सकता है। इस अवस्था में राज्य और राजनीतिक सत्ता की कोई आवश्यकता नहीं होगी। स्वयं गाँधीजी के शब्दों में राजनीतिक सता का अर्थ है– राष्ट्र के प्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्रीय जीवन को नियमित करने की समता । यदि राष्ट्रीय जीवन इतना पूर्ण हो जाय कि व्यक्ति स्वयं ही नियमित अथवा आत्म अनुशासित बन जाय, हो प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं रह जायगी। यह अवस्था ज्ञानमय अराजकता की होगी। यह ऐसी आदर्श व्यवस्था होगी, जिसमें न तो राज्य होगा और न राजनीतिक सत्ता।[9]

संदर्भ सूची :–

1. डॉ. ए. पी. अवस्थी भारतीय राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा– 2008, पृष्ठ – 205.
2. डॉ. संजय सिंह, भारतीय राजनीतिक विचारधाराएँ, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली – 2011, पृष्ठ–247,248.
3. उपरोक्त, वही– (डॉ. ए. पी. अवस्थी)– पृष्ठ– 217.
4. डॉ. पुखराज जैन, राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा– 2010, पृष्ठ– 165.
5. N- K- Bose : stuodies 29 Gandhism, PP- 2-02-203.

6. वही, पृष्ठ 204.

7. Henery D. Thoreau, Selected Writings on Nature and Liborty, P-10.

8. उपरोक्त, वही – (डॉ. पुखराज जैन) पृष्ठ –165–166.

9. उपरोक्त, वही – (ए. पी. अवस्थी) पृष्ठ–218.

डॉ बासुदेव प्रजापति

सहायक प्राध्यापक

राजनीति विज्ञान विभाग

के0 बी0 कॉलेज , बेरमो, बोकारो, झारखण्ड़ – 829113

आवासीय पता –

ग्राम – जरवाटाँड, पो0+थाना– ललपनिया,

जिला– बोकारो, झारखण्ड़ – 829149

मो0– 9430142502 / 7992472758

ईमेल – prajapatibasudeo@gmail.com